राजस्थानी जैन साहित्य की रूप-परम्परा

☐ **डॉ० मनमोहनस्वरूप माथुर,**

प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, आई० बी० कॉलेज, पानीपत (हरियाणा)

विश्व-फलक पर राजस्थान की भूमि गौरवपूर्ण विविध रंगों को ग्रहण किये हुए है। वेशभूषा, खान-पान, रहन-सहन, भाषा आदि में विविध सांस्कृतिक चेतना को समन्वित करने वाला यह अकेला प्रदेश है। यहाँ दुर्गा और सरस्वती एक ही पटल पर विराजमान हैं। यही कारण है कि राजस्थान के अणु-अणु में झंकृत रण-कंकण की ध्वनि और खड्गों की खनखनाहट के समान ही यहाँ के नगर-नगर, ग्राम-ग्राम में अवस्थित ज्ञान-भण्डारों में तथा जन-जिह्वा पर सरस्वती-सेवकों की गिरा सुरक्षित है। इन ज्ञान-भण्डारों में बैठकर राजस्थान के मूर्धन्य जैन विद्वानों ने विभिन्न विषयों पर साहित्य-निर्माण किया जिनमें उनके द्वारा विरचित भक्ति-साहित्य का अपना विशिष्ट महत्त्व है।

राजस्थान में जैनधर्म के प्रचार की जानकारी हमें महावीर स्वामी के निर्वाण के लगभग एक शती बाद से ही मिलने लगती है। पाँचवीं-छठी शताब्दी तक यह व्यापक रूप से फैल गया। यही धर्म निरन्तर विकसित होता हुआ आज राजस्थान की भूमि पर स्वर्णिम रूप से आच्छादित है।

राजस्थान में मध्यमिका नगरी को प्राचीनतम जैन नगर कहा जाता है।[1] करहेड़ा, उदयपुर, रणकपुर, देलवाड़ा (माउण्ट आबू), देलवाड़ा (उदयपुर), जैसलमेर, नागदा आदि स्थानों में निर्मित जैन-मन्दिर राजस्थान में जैनधर्म की प्राचीनता को सिद्ध करते हैं। राजस्थान के साहित्यिक, राजनीतिक, धार्मिक, व्यापारिक और सामाजिक सभी क्षेत्रों में यहाँ के जैनियों का अपूर्व योगदान रहा है।

राजस्थान में जैनियों द्वारा लिखित साहित्य की परम्परा का आरम्भ ५वीं-६ठी शताब्दी से माना जा सकता है। ये मुनि प्राकृत-भाषा में साहित्य लिखते थे। प्रथम जैन साहित्यकार का गौरव भी राजस्थान की भूमि को ही प्राप्त कहा जाता है।[1] आचार्य सिद्धसेन दिवाकर राजस्थान के प्राचीनतम साहित्यकार थे।

राजस्थान के जैन मुनियों को साहित्य के लिए प्रेरित किया यहाँ की राज्याश्रय प्रवृत्ति, धर्मभावना एवं गुरु और तीर्थंकरों की भावोत्कर्षक मूर्तियों ने। जैन परम्परा में उपाध्याय पद की इच्छा ने भी इन मुनियों को श्रेष्ठ साहित्य की रचना के लिए प्रेरित किया। इस प्रकार श्रमण-संस्कृति के परिणामस्वरूप राजस्थान की इस पवित्र गौरवान्वित भूमि पर उत्कृष्ट कोटि का जैन-धार्मिक साहित्य का भी अपनी विशिष्ट शैलियों में सृजन होने लगा। अपनी साहित्यिक विशिष्टता के कारण यह साहित्य जैन-शैली नाम से जाना जाता है। जैन शैली के अद्यतन प्रमुख साहित्यकारों के नाम हैं—आचार्य सिद्धसेन, आचार्य हरिभद्र, उद्योतनसूरि, जिनेश्वरसूरि, महेश्वरसूरि, जिनदत्त सूरि, शालिभद्र, सूरि, नेमिचन्द्र सूरि, गुणपाल मुनि, विनयचन्द्र, सोममूर्ति, अम्बदेव सूरि, जिनपद्म सूरि, तरुणप्रभ सूरि, मेरुनन्दन, राजेश्वर सूरि, जयशेखरसूरि, हीरानन्द सूरि, रत्नमन्डन गणि, जयसागर, कुशललाभ, समयसुन्दर गणि, ठक्कुर फेरू, जयसिंह मुनि, वाचक कल्याणतिलक, वाचक कुशलधीर, हीरकलश मुनि, मालदेवसूरि, नेमिचन्द भण्डारी, आचार्य श्री तुलसी, आचार्य श्री कालूराज जी, आचार्य श्री घासीराम जी, आचार्य श्री आत्माराम जी प्रभृति।[2]

---

१. मज्झमिका, प्रथम अंक, १९७३ ई० (डॉ० ब्रजमोहन जावलिया का लेख)

२. पूज्य प्रवर्तक श्री अम्बालालजी महाराज अभिनन्दन ग्रन्थ, पृ० १९९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इन सभी साहित्यकारों ने यों तो जैन धर्म से सम्बन्धित रचनाओं का ही सृजन किया, जिनका प्रधान रस शान्त है, किन्तु गहराई के साथ अध्ययन के उपरान्त यह साहित्य जनोपयोगी भी सिद्ध होता है। जीवन से सम्बन्धित विविध विषय एवं सृजन की विविध विधाएँ इस साहित्य में उपलब्ध होती हैं। यद्यपि इस साहित्य में कलात्मकता का अभाव अवश्य है, किन्तु भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से समस्त राजस्थानी जैन-साहित्य शोध के लिए व्यापक क्षेत्र प्रस्तुत करता है। इसके अतिरिक्त १३-१५वीं शताब्दी तक के अजैन राजस्थानी ग्रन्थ स्वतन्त्र रूप से उपलब्ध नहीं है, उसकी पूर्ति भी राजस्थानी जैन साहित्य करता है।

१७वीं शताब्दी राजस्थानी जैन साहित्य का स्वर्णकाल कहा जाना चाहिए। इस समय तक गुजरात एवं राजस्थान की भाषाओं में भी काफी अन्तर आ चुका था। किन्तु जैन साधुओं के विहार दोनों प्रान्तों में होने से तथा उनकी पर्यटन-प्रवृत्ति के कारण यह अन्तर लक्षित नहीं होता था। विविध काव्य रूप और विषय अब तक पूर्णतः विकसित हो चुके थे। श्री अगरचंद नाहटा ने इन काव्य रूपों अथवा विधाओं की संख्या निम्नलिखित ११७ शीर्षकों में बताई है—

(१) रास, (२) संधि, (३) चौपाई, (४) फागु, (५) धमाल, (६) विवाहलो, (७) धवल, (८) मंगल, (९) वेलि, (१०) सलोक, (११) संवाद, (१२) वाद, (१३) झगड़ो, (१४) मातृका, (१५) बावनी, (१६) कछा, (१७) बारहमासा, (१८) चौमासा, (१९) कलश, (२०) पवाड़ा, (२१) चर्चरी (चांचरी), (२२) जन्माभिषेक, (२३) तीर्थमाला, (२४) चैत्य परिपाटी, (२५) संघ वर्णन, (२६) ढाल, (२७) ढालिया, (२८) चौढालिया, (२९) छढालिया, (३०) प्रबन्ध, (३१) चरित्र, (३२) सम्बन्ध, (३३) आख्यान, (३४) कथा, (३५) सतक, (३६) बहोत्तरी, (३७) छत्तीसी, (३८) सत्तरी, (३९) बत्तीसी, (४०) इक्कीसो, (४१) इकत्तीसो, (४२) चौवीसो, (४३) बीसी, (४४) अष्टक, (४५) स्तुति, (४६) स्तवन, (४७) स्तोत्र, (४८) गीत, (४९) सज्झाय, (५०) चैत्यवंदन, (५१) देववन्दन, (५२) वीनती, (५३) नमस्कार, (५४) प्रभाती, (५५) मंगल, (५६) साँझ, (५७) बधावा, (५८) गहूँली, (५९) हीयाली, (६०) गूढ़ा, (६१) गजल, (६२) लावणी, (६३) छंद, (६४) नीसाणी, (६५) नवरसो, (६६) प्रवहण, (६७) पारणो, (६८) बाहण, (६९) पट्टावली, (७०) गुर्वावली, (७१) हमचड़ी, (७२) हींच, (७३) माल-मालिका, (७४) नाम-माला, (७५) रागमाला, (७६) कुलक, (७७) पूजा, (७८) गीता, (७९) पट्टाभिषेक, (८०) निर्वाण, (८१) संयम श्रीविवाह-वर्णन, (८२) भास, (८३) पद, (८४) मंजरी, (८५) रसावली, (८६) रसायन, (८७) रसलहरी, (८८) चन्द्रावला, (८९) दीपक, (९०) प्रदीपिका, (९१) फुलड़ा, (९२) जोड़, (९३) परिक्रम, (९४) कल्पलता, (९५) लेख, (९६) विरह, (९७) मंदड़ी, (९८) सत, (९९) प्रकाश, (१००) होरी, (१०१) तरंग, (१०२) तरंगिणी, (१०३) चौक, (१०४) हुंडी, (१०५) हरण, (१०६) विलास, (१०७) गरबा, (१०८) बोली, (१०९) अमृतध्वनि (११०) हालरियो, (१११) रसोई, (११२) कड़ा, (११३) झूलणा, (११४) जकड़ी, (११५) दोहा, (११६) कुंडलिया, (११७) छप्पय।[1]

इन नामों में विवाह, स्तोत्र, वंदन, अभिषेक, आदि से सम्बन्धित नामों की पुनरावृत्ति हुई है। इसके अतिरिक्त विलास, रसायन, विरह, गरबा, झूलणा प्रभृति काव्य-विधाएँ चरित, कथा-काव्य एवं ऋतु-सम्बन्धी काव्य रूप में ही समाहित हो जाते हैं। अतः इन सभी काव्यों का मोटे रूप में इस प्रकार वर्गीकरण किया जा सकता है—

१. **पद्य**—

(क) प्रबन्ध काव्य—**(अ) कथा चरित काव्य**—रस, आख्यान, चरित्र, कथा, विलास, चौपाई, संधि सम्बन्ध, प्रकाश, रूपक, विलास, गाथा इत्यादि।

(आ) ऋतुकाव्य—फागु, धमाल, बारहसासा, चौमासा, छमासा, विरह, होरी, चौक, चर्चरी, झूलणा इत्यादि।

(इ) उत्सवकाव्य—विवाह, मंगल, मूँदड़ी, गरबा, फुलड़ा, हालरियो, धवल, जन्माभिषेक, बधावा।

१. भारतीय विद्यामन्दिर, बीकानेर—प्राचीन कार्यों की रूप परम्परा, पृ० २-३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(ख) **मुक्तककाव्य**—(अ) **धार्मिक**—तीर्थमाला, संघ वर्णन, पूजा, विनती, चैत्य परिपाटी, ढाल, मातृका, नमस्कार, परिभाति, स्तुति, स्तोत्र, निर्वाण, छंद, गीति आदि।

(आ) **नीतिपरक**—कक्का, बत्तीसी, बावनी, शतक, कुलक, सलोका, पवाड़ा, बोली, गूढ़ा आदि।

(इ) **विविध मुक्तक रचनाएँ**—गीत, गजल, लावणी, हमचढ़ी, हींच, छंद, प्रवहण, भास, नीसाणी, बहोत्तरी, छत्तीसी, इक्कीसो आदि संख्यात्मक काव्य, शास्त्रीय काव्य।

(२) **गद्य**—

टब्बा, बालावबोध, गुर्वावली, पट्टावली, विहार पत्र, समाचारी, विज्ञप्ति, सीख, कथा, ख्यात, टीका ग्रन्थ इत्यादि।

जैन साहित्य की इन विधाओं में से कतिपय का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है।

पद्य काव्य

(१) **रासौ काव्य**—रास, रासक, रासो, राइसौ, रायसौ रायड़, रासु आदि नामों से रासौ नामपरक रचनाएँ मिलती हैं। वस्तुतः भाषा के परिवर्तन के अनुसार विभिन्न कालों में ये नाम प्रचलित रहे। विद्वानों ने रासौ की उत्पत्ति विभिन्न रूपों में प्रस्तुत की है। आचार्य शुक्ल बीसलदेव रास के आधार पर रसाइन शब्द से रासो की उत्पत्ति मानते हैं।[1] प्रथम इतिहास लेखक गार्सेद तासी ने राजसूय शब्द से रासौ की उत्पत्ति मानी है।[2] डा० दशरथ ओझा रासौ शब्द को संस्कृत के शब्द से व्युत्पन्न न मानकर देशी भाषा का ही शब्द मानते हैं, जिसे बाद में विद्वानों ने संस्कृत से व्युत्पन्न मान लिया है।[3] डॉ० मोतीलाल मेनारिया रासौ की व्याख्या करते हुए लिखते हैं—"चरित-काव्यों में रासौ ग्रन्थ मुख्य हैं। जिस काव्य ग्रन्थ में किसी राजा की कीर्ति, विजय, युद्ध, वीरता आदि का विस्तृत वर्णन हो, उसे रासो कहते हैं।[4]

निष्कर्ष रूप में रासौ रसाइन शब्द से व्युत्पन्न माना जा सकता है। जैन-साहित्य के सन्दर्भ में ये लौकिक और शृंगारिक गीत रचनाएँ हैं, जिनमें जैनियों ने अनेक चरित काव्यों का निर्माण किया। ये रासौ काव्य शृंगार से आरम्भ होकर शान्तरस में परिणत होते हैं। यही जैन रासौ-काव्य का उद्देश्य है। इस परम्परा में लिखे हुए प्रमुख रासौ ग्रन्थ हैं—विक्रमकुमार रास (साधुकीर्ति),[5] विक्रमसेन रास (उदयभानु)[6] बेयरस्वामी रास (जयसागर)[7] श्रेणिक राजा नो रास (देपाल),[8] नलदवदंती रास (ऋषिवर्द्धन सूरि)[9], शकुन्तला रास (धर्मसमुद्रगणि),[10] तेतली मंत्री रास (सहजसुन्दर),[11] वस्तुपाल-तेजपाल रास (पार्श्वचंद्र सूरि),[12] चंदनबाला रास (विनय समुद्र),[13] जिनपालित जिन-

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ३२
२. हिन्दी साहित्य का इतिहास
३. हिन्दी नाटक : उद्भव और विकास, पृ० ७० (द्वितीय संस्करण)
४. राजस्थान का पिंगल साहित्य, पृ० २४ (१९५२ ई०)
५. जैन गुर्जर कविओ, भाग १, पृ० ३४-३५
६. वही, पृ० ११३
७. वही, पृ० २७
८. वही, पृ० ३७, भाग ३, पृ० ४४६, ४९६
९. जैन साहित्य नो संक्षिप्त इतिहास, पृ० ७५०, ७६८
१०. जैन गुर्जर कविओ, भाग १, पृ० ११६; भाग ३, पृ० ५४८
११. वही, भाग १, पृ० १२०, भाग ३, पृ० ५५७
१२. वही, भाग १, पृ० १३९, भाग ३, पृ० ५८६
१३. राजस्थान भारती, भाग ५, अंक ९, जनवरी १९५६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रक्षित रास (कनक सोम)[१], तेजसार रास, अगड़दत्त रास (कुशललाभ)[२], अंजनासुन्दरीरास (उपाध्याय गुण-विनय)[3]।

(२) **चौपाई (चउपाई, चउपई)**—रासौ विधा के पश्चात् जैन साहित्य में सर्वाधिक रचनाएँ चौपाई नाम से मिलती है। यह नाम छन्द के आधार पर है। चौपाई सममात्रिक छन्द है, जिसके प्रत्येक चरण में पन्द्रह एवं सोलह मात्राएँ होती हैं। १७वीं शताब्दी तक रासौ और चौपाई परस्पर पर्याय रूप में प्रयुक्त होने लगे कुछ उल्लेखनीय चौपाई काव्य निम्नलिखित हैं—पंचदण्ड चौपाई (१५५६ अज्ञात कवि)[४], पुरन्दर चौपई (मालदेव)[५] चंदन राजा मलयागिरी चौपाई (हीरविशाल के शिष्य द्वारा रचित)[६] चंदनबाला चरित चौपाई (देपाल)[७], मृगावती चौपाई (विनयसमुद्र)[८], अमरसेन वयरसेन चौपाई (राजशील)[९] माधवानल कामकंदला चौपई, ढोला माखणी चौपाई[१०], भीमसेन हँसराज चौपाई[११], (कुशललाभ), देवदत्त चौपाई (मालदेव)[१२], आषाढ़भूति चौपाई (कनकसोम)[१३], गोराबादल पद्मिनी चौपाई (हेमन्त सूरि)[१४], गुणसुन्दरी चौपई (गुणविनय)।[१५]

(३) **सन्धि-काव्य**—अपभ्रंश महाकाव्यों के अर्थ में संधि शब्द का प्रयोग होता था। महाकाव्य के लक्षण बताते हुए हेमचन्द्र ने कहा है कि संस्कृत महाकाव्य सर्गों में, प्राकृत आश्वासों में अपभ्रंश संधियों में एवं ग्राम स्कन्धों में निबद्ध होता है।[१६] भाषा-काव्य (राजस्थानी) में संधि नाम की रचनाएँ १४वीं शताब्दी से मिलने लगती हैं। कतिपय संधि काव्य इस प्रकार हैं—आनंद संधि (विनयचंद), केशी गौतम संधि[१७] (कल्याणतिलक), नंदनमणिहार संधि (चारुचंद्र), उदाहरणर्षि संधि, राजकुमार संधि (संयममूर्ति), सुबाहु संधि (पुण्यसागर), जिनपालित जिनरक्षित संधि, हरिकेशी संधि (कनकसोम), चउसरण प्रकीर्णक संधि (चारित्रसिंह), भावना संधि (जयसोम) अनाथी संधि (विमल-विनय), कयवला संधि (गुणविनय)।[१८]

(४) **प्रबन्ध, चरित, सम्बन्ध, आख्यान, कथा, प्रकाश, विलास, गाथा इत्यादि**—ये सभी नाम प्रायः एक दूसरे के पर्याय हैं। जो ग्रन्थ जिसके सम्बन्ध में लिखा गया है, उसे उसके नाम सहित उपर्युक्त संज्ञाएँ दी जाती हैं।

१. युगप्रधान श्री जिनचंद्रसूरि, पृ० १९४-९५
२. मनमनोहनस्वरूप माथुर—कुशललाभ और उनका साहित्य (राजस्थान विश्वविद्यालय से स्वीकृत शोध प्रबन्ध)
३. शोध पत्रिका, भाग ८, अंक २-३, १९५६ ई०
४. जैन गुर्जर कविओ, भाग १, पृ० ९९
५. हिन्दी जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास, पृ० ९८-१००
६. कल्पना—दिसम्बर, १९५७, पृ० ८१
७. जैन गुर्जर कविओ, भाग १, पृ० ३७
८. राजस्थानी भारती, भाग ५, अंक १, जनवरी, १९५६
९. जैन गुर्जर कविओ, भाग ३, पृ० ५३९
१०. सं० मोहनलाल दलीचंद देसाई—आनन्द काव्य महोदधि, मौ० ७
११. एल० डी० इंस्टीट्यूट, अहमदाबाद, हस्तलिखित ग्रंथ
१२. राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज, भाग २
१३. युगप्रधान श्री जिनचंद्र सूरि, पृ० १९४-९५
१४. कल्पना, वर्ष १, अंक १, १९४९ ई० (हिन्दी और मराठी साहित्य प्रकाशन—माचवे)
१५. शोधपत्रिका, भाग ८, अंक २-३, १९५६ ई०
१६. डॉ० हीरालाल माहेश्वरी—राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ० २३७
१७. जैन गुर्जर कविओ, भाग १, पृ० ३७
१८. डॉ० हीरालाल माहेश्वरी—राजस्थानी भाषा और साहित्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इन नामों में सम्बन्धित कुछ काव्य रचनाओं के नाम हैं—भोज चरित (मालदेव)[1] अंबड चरित (विनयसुन्दर)[2] नवकार प्रबन्ध (देवाल)[3], भोजप्रबन्ध (मालदेव)[4], कालिकाचार्य कथा, आषाढ़भूति चौपाई सम्बन्ध (कनकसोम)[5] विद्या-विलास (हीरानन्द सूरि)।[6]

(५) **पवाड़ो और पवाड़ा**—पवाड़ा शब्द की व्युत्पत्ति भी विवादास्पद है। डॉ० सत्येन्द्र, इसे परमार शब्द से व्युत्पन्न मानते हैं।[7] पंवाड़ो में वीरों के पराक्रम का प्रयोग होता है।[8] यह महाराष्ट्र का प्रसिद्ध लोकछन्द भी है। बंगाली में वर्णात्मिक कविता अथवा लम्बी कविता के कथात्मक भाग में पयार कहते हैं। बंगाली में भी यह एक छन्द है। पयार की उत्पत्ति संस्कृत के प्रवाद से मानी जाती है।[9] डॉ० मंजुलाल र० मजुमदार के अनुसार पंवाड़ो वीर का प्रशस्ति काव्य है। रचनाबन्ध की दृष्टि से विविध तत्त्वों के आधार पर वे आसाइत के हंसावली प्रबन्ध, भीम के सदयवत्सवीर प्रबन्ध तथा शालिसूरि के विराट पर्व के अन्तर्गत मानते हैं।[10] पवाडा के लिए प्रवाडा शब्द का भी प्रयोग मिलता है।[11]

इस प्रकार पवाडा या पवाडो का प्रयोग कीर्ति गाथा, वीरगाथा, कथाकाव्य अथवा चरित काव्यों के लिए प्रयुक्त किया जाने वाला शब्द है जिसकी व्युत्पत्ति संस्कृत के प्रवाद शब्द से मानी जा सकती है—सं० प्रवाद > प्रा० पवाअ > पवाड़अ—पवाडो। चारण-साहित्य में इसका प्रयोग बहुधा वीर-गाथाओं के लिए हुआ है तथा जैन साहित्य में धार्मिक ऋषि-मुनियों के वर्चस्व को प्रतिपादित करने वाले ग्रन्थों के लिए। जैन साहित्य में इस नाम की प्रथम रचना हीरानन्दसूरि रचित विद्याविलास पवाडा (वि० सं० १४८५) को माना जाता है।[12] ऐसी ही अन्य कृति है—बंकचूल पवाड़ो (ज्ञानचन्द्र)।[13]

(६) **ढाल**—किसी काव्य के गाने की तर्ज या देशी को ढाल कहते हैं। १७वीं शताब्दी से जब रास, चौपाई आदि लोकगीतों की देशियों में रचे जाने लगे तब उनको ढालबंध कहा जाने लगा। प्रबन्ध काव्यों में ढालों के प्रयोग के कारण ही इसका वर्णन प्रबन्ध काव्य की विधा में किया जाता है, अन्यथा यह पूर्णतः मुक्तक काव्य की विधा है। जैन-साहित्य में अनेक भजनों का ढालों में प्रणयन हुआ। मोहनलाल दलीचन्द देसाई ने लगभग २५०० देशियों की सूची दी है।[14] कुछ प्रमुख ढालों के नाम इस प्रकार हैं—ढाल वेली नी, ढाल मृगांकलेखा नी, ढाल संधि नी ढाल वाहली, ढाल सामेरी, ढाल उल्लाला।[15]

---

१. जैन गुर्जर कविओ, भाग १, पृ० ३०५
२. राजस्थान भारती, भाग ५, अंक १, जनवरी, १९५६ ई०
३. जैन गुर्जर कविओ, पृ० ३७
४. हिन्दी जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास, पृ० ९८-१००
५. युगप्रधान श्री जिनचंद्र सूरि, पृ० १९४-९५
६. डॉ० माहेश्वरी—राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ० २४८
७. मरुभारती, वर्ष १, अंक ३, सं० २०१०
८. कल्पना, वर्ष १, अंक १, १९४९ ई० (हिन्दी और मराठी साहित्य—प्रभाकर माचवे)
९. डॉ० हीरालाल माहेश्वरी—राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ० २३८
१०. गुजराती साहित्य नो स्वरूपो, पृ० १२३, १२५
११. मुहता नैणसी री ख्यात, भाग १, पृ० ७१
१२. गुर्जर रासावली—एम० एस० यूनीवर्सिटी प्रकाशन
१३. जैन गुर्जर कविओ, भाग ३, पृ० ५४३-४४
१४. आनन्द महाकाव्य महोदधि, मौ० ७
१५. सं० भँवरलाल नाहटा—ऐतिहासिक काव्य-संग्रह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(७) **फागु-काव्य**—ऋतु-वर्णन में फागु-काव्य जैन साहित्य की विशिष्ट साहित्यिक विधा है। फाल्गुन-चैत्र (बसन्त ऋतु) मास में इस काव्य को गाने का प्रचलन है। इसलिए इन्हें फागु या फागु-काव्य भी कहा जाता है। गरबा भी ऐसे उत्सवों पर गाये जाने वाले नृत्यगीत हैं। फागु और गरबा रास काव्य के ही प्रभेद हैं। इन काव्यों में शृंगार-रस के दोनों रूपों—संयोग और वियोग का चित्रण किया जाता है। प्रवृत्तियों एवं काव्य शैली के आधार पर विद्वानों ने फागु की व्युत्पत्ति भिन्न-भिन्न प्रकार से मानी है। डॉ० बी० जे० साण्डेसरा फागु को संस्कृत के फला शब्द से व्युत्पन्न मानते हैं—फला—फगु—फागु।[1] डिंगल कोश में फाल्गुन के पर्यायवाची फालगुण और फागण बताये हैं।[2] इन व्युत्पत्तियों से यह भी स्पष्ट होता है कि फागु का उद्भव गेय-रूपकों काव्यों में वसन्तोत्सव मनाने से से हुआ है।

इनमें मुख्य रूप से संयमश्री के साथ जैन मुनियों के विवाह, शृंगार, विरह और मिलन वर्णित होते हैं। जैन मुनि चूंकि सांसारिक बन्धन तोड़ चुके हैं, अतः उनके लौकिक विवाह का वर्णन इनमें नहीं मिलता। इन्हीं विषयों को लेकर जैन मुनियों ने १४वीं शताब्दी से १७वीं शताब्दी अनेक ऋषियों से सम्बन्धित फागु काव्यों का निर्माण किया। इस शृंखला की प्राचीनतम रचना जिनचन्द सूरि फागु (वि० सं० १३४६-१३७३) कही गयी है।[3] अन्य महत्त्वपूर्ण रचनाएँ इस प्रकार हैं—स्थूलभद्र फाग (देवाल)[4], नेमिफाग (कनकसोम),[5] नेमिनाथ फाग[6] जम्बू-स्वामी फाग आदि।[7]

(८) **धमाल**—फागु-काव्यों के पश्चात् धमाल-काव्य-रूप का विकास हुआ। यों फागु और धमाल की विषय-वस्तु समान ही है। होली के अवसर पर आज भी ब्रज और राजस्थान में धमालें गाने का रिवाज है। यह एक लोक-परम्परा का शास्त्रीय राग है। जैन कवियों ने इस परम्परा में अनेक रचनाएँ की हैं। यथा—आषाढ़भूति धमाल, आर्द्रकुमार, धमाल (कनकसोम)[8] नेमिनाथ धमाल (मालदेव)[9] इत्यादि।

(९) **चर्चरी (चांचरी)**—धमाल के समान ही चर्चरी भी लोकशैली पर विरचित रचना है। ब्रजप्रदेश में चंग (ढप्प) की ताल के साथ गाये जाने वाले फागुन और होली के गीतों को चंचरी कहते हैं। अतः वे संगीतबद्ध राग-रागिनियों में बद्ध रचनाएँ जो नृत्य के साथ गायी जाती हैं, चर्चरी कहलाती है। प्राकृ-पैंगलम् में चर्चरी को छन्द कहा गया है।[10] जैन-साहित्य में चर्चरीसंज्ञक रचनाओं का आरम्भ १४वीं शताब्दी से हुआ।[11] जिनदत्तसूरि एवं जिनवल्लभसूरि की चर्चियाँ विशेष प्रसिद्ध हैं, जो गायकवाड़ ओरियंटल सीरीज में प्रकाशित हैं।

(१०) **बारहमासा**—बारहमासा, छमासा, चौमासा-संज्ञक काव्यों में कवि वर्ष के प्रत्येक मास, ऋतुओं अथवा कथित मासों की परिस्थितियों का चित्रण करता है। इसका प्रमुख रस विप्रलम्भ शृंगार होता है। नायिका के विरह

---

१. प्राचीन फागु-संग्रह, पृ० ५३
२. परम्परा
३. सम्मेलन पत्रिका (नाहटाजी का निबन्ध 'राजस्थानी फागु काव्य की परम्परा और विशिष्टता')
४. जैन गुर्जर कविओ, भाग १, पृ० ३७, पृ० ४४६, ४६६
५. जैन साहित्य नो संक्षिप्त इतिहास, चै० ८६६
६. सम्मेलन पत्रिका
७. सी० डी० दलाल—प्राचीन गुर्जर कवि-संग्रह, पृ० ४१, पद २७
८. युगप्रधान जिनचंद्र सूरि, द० १६४-६५
९. राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रंन्थों की खोज, भाग २
१०. हिन्दी छन्द प्रकाश, पृ० १३१
११. जैन सत्य प्रकाश, वर्ष १२, अंक ६ (हीरालाल कावडिया का 'चर्चरी' नामक लेख)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

को उद्दीप्त करने के लिए प्रकृति-चित्रण भी इन रचनाओं में सघन रूप में मिलता है। मासों पर आधारित जैन साहित्य की यह विधा लोक साहित्य से ग्रहीत है। बारहमासा का वर्णन प्रायः आषाढ़ मास से आरम्भ किया जाता है। जैन कवियों ने बारहमासा, छमासा अथवा चौमासा काव्य-परम्परा के अन्तर्गत अनेक कृतियाँ लिखी हैं, यथा—नेमिनाथ बारमासा चतुष्पदिका (विनयचन्द्रसूरि),[१] नेमिनाथ राजिमति बारमास (चारित्रकलश)।[२]

जैन-रास, चौपाई, फागु-संज्ञक रचनाओं में इन कवियों ने यथा-प्रसंग बारहमासा आदि के मार्मिक चित्र प्रस्तुत किये हैं। कुशललाभ की माधवानल कामकंदला, अगड़दत्त रास, ढोला माखणी चौपई, स्थूलिभद्र छत्तीसी, भीमसेन हंसराज चौपई आदि रचनाओं से इनके श्रेष्ठ उदाहरण प्रस्तुत किये जा सकते हैं।

(११) **विवाहलो, विवाह, धवल, मंगल**—जिस रचना में विवाह का वर्णन हो, उसे विवाहला और इस अवसर पर गाये जाने वाले गीतों को धवल या मंगल कहा जाता है। विवाह-संज्ञक रचनाओं में जिनेश्वर सूरिकृत संयमश्री विवाह वर्णन रास एवं जिनोदय सूरि विवाहला अब तक प्राप्त रचनाओं में प्राचीनतम हैं[३] तथा धवल-संज्ञक रचनाओं में जिनपति सूरि का धवलगीत प्राचीनतम माना गया है।[४] इन नामों से सम्बन्धित अन्य रचनाएँ हैं—नेमिनाथ विवाहलो (जयसागर),[५] आर्द्रकुमार धवल (देपाल),[६] महावीर विवाहलउ (कीर्तिरत्न सूरि), शान्तिविवाहलउ (लक्ष्मण), जम्बू अंतरंग रास विवाहलउ (सहजसुन्दर), पार्श्वनाथ विवाहलउ (पेथो), शान्तिनाथ विवाहलो धवल प्रबन्ध (आणन्द प्रमोद), सुपार्श्वजिन-विवाहलो (ब्रह्मविनयदेव)।[७]

(१२) **वेलि**—रचना-प्रकार की दृष्टि से वेलि हिन्दी के लता, वती आदि काव्य रूपों की तरह है। इसमें भी विवाह-प्रसंग का ही चित्रण किया जाता है। चारण कवियों द्वारा रचित कृतियों में वि० सं० १५२८ के आसपास रचित बाछा कृत चिहुँगति वेलि सबसे प्राचीन कही जाती है।[८] अन्य महत्त्वपूर्ण जैन-वेलियाँ हैं—जम्बूवेलि (सीहा), गरभवेलि (लावण्यसमय), गरभवेलि (सहजसुन्दर), नेमि राजुल बारहमासा वेलि (वि० सं० १६१५), स्थूलिभद्र मोहन वेलि (जयवंत सूरि) जहत पद वेलि (कनकसोम)[९] इत्यादि।

(१३) **मुक्तक काव्य**—राजस्थानी जैन मुक्तक काव्य का अध्ययन धार्मिक नीतिपरक एवं इतर धार्मिक शीर्षकों में किया जा सकता है। धार्मिक साहित्य के अन्तर्गत जैन कवियों ने गीत, कवित्त, तीर्थमाला, संघवर्णन, पूजा, विनती, चैत्य, परिपाटी, मातृका, नमस्कार, परभाति, स्तुति, स्तोत्र, मूंदड़ी, सज्झाय, स्तवन, निर्वाण, पूजा, छंद, चौबीसी, छत्तीसी, शतक, हजारा आदि नामों से की है। इन रचनाओं में तीर्थंकरों, जैन महापुरुषों, साधुओं, सतियों, तीर्थों आदि के गुणों का वर्णन किया जाता है। दुर्गुणों के त्याग और सद्गुणों के ग्रहण करने के गीत तथा आध्यात्मिक गीत भी धार्मिक मुक्तक-काव्य की विषय-वस्तु है। कुछ उल्लेखनीय रचनाएँ हैं—चौबीस जिनस्तवन, अजितनाथ स्तवन विनती, अष्टापद तीर्थ बावनी, चतुर्विंशतीजिनस्तवन, अजितनाथ विनती, पंचतीर्थंकर नमस्कारस्तोत्र, महावीर वीनती, नगर-

---

१. प्राचीन गुर्जर काव्य-संग्रह
२. गुजराती साहित्य ना स्वरूपो, पृ० २७६
३. सं० भँवरलाल नाहटा,—ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह
४. डा० माहेश्वरी—राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ० २४४
५ ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह, पृ० ४००
३. जैन साहित्य नो संक्षिप्त इतिहास, पृ० ८६७
७ जैन सत्यप्रकाश, अंक १०-११, वर्ष ११, क्रमांक १३०-३१
८. डा० माहेश्वरी—राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ० २४३
६. जैन धर्म प्रकाश, वर्ष ६५, अंक २ (हीरालाल कावडिया का लेख)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कोट-साहित्य परिपाटी, चैत्य परिपाटी, शान्तिनाथ वीनती (जयसागर)[1] स्नात्र पूजा, थावच्याकुमार दास (देपाल),[2] नेमिगीत (मतिशेखर)[3] गुणरत्नाकर-छंद, ईलातीपुत्र-सज्झाय, आदिनाथ शत्रुंजय स्तवन (सहजसुन्दर)[4] साधुवंदना; उपदेश रहस्य गीत; वीतरागस्तवन ढाल; आगमछत्रीशी; एषणाशतक; शत्रुंजय स्तोत्र (पार्श्व सूरि)[5] स्तंभन पार्श्वनाथ-स्तवन; गोड़ी-पार्श्वनाथ छंद; पूज्यवाहण गीत; नवकारछंद (कुशललाभ)[6] महावीर पंचकल्याण स्तवन; मनभमरागीत (मालदेव)[7]; सोलहस्वप्न सज्झाय (हीरकलश)[8] इत्यादि।

नीतिपरक रचनाएँ

यदि जैन साहित्य को उपदेश, ज्ञान और नीति परक भी कहे तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। कारण, जैन कवियों का मुख्य उद्देश्य धार्मिक प्रचार करना था। अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होंने संवाद, कक्का, बत्तीसी, मातृका, बावनी, कुलक, हियाली, हरियाली, गूढ़ा, पारणो, सलोक, कड़ी, कड़ा इत्यादि साहित्यिक विधाओं को ग्रहण किया। इनमें से उल्लेखनीय विधाओं का परिचय इस प्रकार है—

(१४) **संवाद**—इनमें दोनों पक्ष एक-दूसरे को हेय बताते हुए अपने पक्ष को सर्वोपरि रखते हैं। दोनों ही पक्षों की मूलभावना सम्यक्ज्ञान करवाना है। कुछ संवाद जैनेतर विषयों पर भी है। संवाद संज्ञक रचनाएँ १४वीं शताब्दी से मिलने लगती हैं। कुछ उल्लेखनीय संवाद निम्नलिखित हैं—आँख-कान संवाद; यौवन-जरा संवाद (सहजसुन्दर); कर-संवाद, रावण-मंदोदरी संवाद, गोरी-साँवली संवाद गीत (लावण्यसमय); जीभ-संवाद, मोती-कपासिया संवाद (हीरकलश); सुखड़ पंचक संवाद (नरपति) इत्यादि।[9]

(१५) **कक्का-मातृका-बावनी-बारहखड़ी**—ये सभी नाम परस्पर पर्याय हैं। इनमें वर्णमाला के बावन अक्षर मानकर प्रत्येक वर्ग के प्रथम अक्षर से आरम्भ कर प्रासंगिक पद रचे जाते हैं। बावनी नाम इस सन्दर्भ में १६वीं शताब्दी से प्रयोग में आया। ऐसी प्रकाशित कुछ रचनाएँ हैं—छीहल बावनी[10], डूंगर बावनी (पद्मनाभ)[11], शील बावनी (मालदेव)[12], जगदम्बा बावनी (हेमरत्नसूरि)[13]।

(१६) **कुलक या खुलक**—जिस रचना में किसी शास्त्रीय विषय की आवश्यक बातें संक्षेप में संकलित की गई हों अथवा किसी व्यक्ति का संक्षिप्त परिचय दिया गया हो—ऐसी रचनाएँ कुलक कही जाती हैं।[14] १६वीं-१७वीं

---

१. शोधपत्रिका, भाग ६, अंक १, दिस० १६५७ ई०
२. जैन गुर्जर कविओ, भाग १, भाग ३, पृ० ४४६
३. जैन साहित्य नो संक्षिप्त इतिहास, पैं० ७६८
४. जैन गुर्जर कविओ, भाग १, पृ० १२०, भाग ३, पृ० ५५७; (१६६२)
५. वही, पृ० १३६, भाग ३, पृ० ५८६
६. मनोहनस्वरूप माथुर—कुशललाभ और उनका साहित्य (राजस्थान विश्वविद्यालय द्वारा स्वीकृत शोध प्रबन्ध)
७. हिन्दी जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास, पृ० ६८-१००
८. शोध पत्रिका, भाग ७, अंक ४
९. डॉ० माहेश्वरी—राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ० २४५
१०. अनूप संस्कृत लायब्रेरी, बीकानेर, हस्तलिखित प्रति सं० २८२।२ (ज्ञ)
११. श्री अभयजैन ग्रन्थमाला, बीकानेर हस्तलिखित प्रति
१२. राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज, भाग २
१३. डॉ० माहेश्वरी—राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ० २६६
१४. नागरी प्रचारिणी पत्रिका, वर्ष ५८, अंक ४, सं० २०१०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शताब्दी के कतिपय कुलक इस प्रकार हैं—ब्रह्मचर्य दशसमाधिस्थान कुलक, वंदन दोष ३२ कुलक, गीतार्थ पदावबोध कुलक (पार्श्वचद्र सूरि)[१], दिनमान कुलक (हीरकलश)।[२]

(१७) **हीयाली**—कूट या पहेली को हीयाली कहते हैं।[3] हीयालियों का प्रचार सोलहवीं शताब्दी से हुआ। इस काव्य-शैली की प्रमुख कृतियाँ हैं—हरियाली (देपाल), गुरुचेला-संवाद (पिंगल शिरोमणि कुशललाभ कृत के अंश),[४] अष्टलक्ष्मी (समयसुन्दर)[५] इत्यादि।

(१८) **विविध मुक्तक रचनाएँ**—जैन कवियों ने जैन धर्म से हटकर अन्य विषयों पर भी गीत, छंद, छप्पय, गजलें, पद, लावनियाँ, भास, शतक, छत्तीसी आदि नामों से भी रचनाएँ की हैं। इनके विषय इतिहास, उत्सव, विनोद आदि हैं। इनके अतिरिक्त जैन मुनियों ने शास्त्रीय विषयों को भी अपने साहित्य का आधार बनाया। इस दृष्टि से व्याकरण, काव्यशास्त्र, आयुर्वेद, गणित, ज्योतिष प्रभृति अनेक शास्त्रीय ग्रन्थ एवं उन पर टीकाएँ उपलब्ध हैं। संख्याधारी रचनाओं में छन्दों की प्रमुखता होती हैं। कहीं-कहीं उनमें निहित कथाओं अथवा उपदेशों को भी ये संख्या द्योतित करते हैं। जैसा—वैताल पच्चीसी (ज्ञाचन्द्र)[६] सिंहासन बत्तीसी (मलयचंद्र)[७], विल्हण पंचाशिका (ज्ञानाचार्य)।[८] संख्या नामधारी काव्य-रचनाओं में इन्होंने अधिकांशतः धार्मिक स्तुतियाँ ही लिखी हैं। महत्त्वपूर्ण शास्त्रीय ग्रन्थ निम्नलिखित हैं—

(क) व्याकरण शास्त्र—बाल-शिक्षा, उक्ति रत्नाकर, उक्तिसमुच्चय, हेमव्याकरण[९], उंडिगल-नाममाला।[१०]

(ख) काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ—पिंगलशिरोमणि, दूहाचंद्रिका, वृत्तरत्नाकर, विदग्ध मुखमंडनबालावबोध इत्यादि।

(ग) गणितशास्त्र—लीलावती-भाषा चौपाई, गणितसार-चौपाई, गणित साठिसो इत्यादि।

(घ) ज्योतिष शास्त्र—पंचांग-नयन चौपाई, शकुनदीपिका चौपाई, अंगफुरकन चौपाई, वर्षफलाफल सज्झाय आदि।[११]

गद्य-साहित्य

(१९) जैनियों ने पद्य के साथ-साथ राजस्थानी को श्रेष्ठ कोटि की गद्य रचनाएँ भी दी हैं हिन्दी ग्रन्थ के विकास-क्रम की भी यही परम्परा प्रथम सोपान है। जैनियों द्वारा लिखित गद्य के दो रूप मिलते हैं—गद्य-पद्य मिश्रित तथा शुद्ध गद्य। गद्य-पद्यमिश्रित गद्य संस्कृत-चम्पू साहित्य के समान ही वचनिका साहित्य के नाम से अभिहित है। चारण गद्य साहित्य में अनेक वचनिकाएँ लिखी गई हैं। जैन शैली में इस परम्परा की उपलब्ध रचनाएँ हैं—जिनसमुद्रसूरि री वचनिका, जयचन्दसूरिकृत माता जी री वचनिका (१८वीं शती वि०)।

१. जैन गुर्जर कविओ, भाग १, पृ० १३९, भाग ३, पृ० ५८६
२. शोध पत्रिका, भाग ७, अंक ४, सं० २०१३ (राजस्थान के एक बड़े कवि हीरकलश)
३. जैन गुर्जर कविओ, भाग १, ३
४. परम्परा, भाग १३; राजस्थान भारती, भाग २, अंक १, १९४८ ई०
५. आनन्द काव्य महोदधि, मौक्तिक ७
६. जैन गुर्जर कविओ, भाग १, पृ० ५४५
७. वही, पृ० ४७४
८. वही, पृ० ६३६
९. पूज्यप्रवर्तक श्री अम्बालालाजी महाराज अभिनंदन ग्रन्थ ('राजस्थानी जैन साहित्य' नामक लेख), पृ० ४६०
१०. परम्परा, भाग १३
११. पूज्यप्रवर्तक श्री अम्बालालजी महाराज अभिनन्दन ग्रन्थ, पृ० ४६४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(२०) **टीका-टब्बा-बालावबोध**—काव्य, आयुर्वेद, व्याकरण प्रभृति मूल रचनाओं के स्पष्टीकरण के लिए पत्रों के किनारों पर जो संक्षिप्त गद्य-टिप्पणियाँ हाँशिये पर लिखी जाती हैं, उन्हें टब्बा तथा विस्तृत स्पष्टीकरण को बालावबोध कहा जाता है। विस्तार के कारण बालावबोध सुबोध होता है। इसमें विविध दृष्टान्तों का भी प्रयोग किया जाता है। मूल-पाठ पृष्ठ के बीच में अंकित होता है। इस शैली में लिखित साहित्य ही टीका कहलाता है। राजस्थानी जैन-टीका साहित्य समृद्ध है। उल्लेखनीय टीकाएँ निम्नलिखित हैं—

धूर्ताख्यानकथासार, माधवनिदान टब्बा, वैद्य जीवन टब्बा, शतश्लोकी टब्बा, पथ्यापथ्य टब्बा, विवाहपडल बालावबोध, भुवनदीपक बालावबोध, मुहूर्तचितामणि बालावबोध, भर्तृहरि भाषा टीका इत्यादि।[1]

२१. **पट्टवली-गुर्वावली**—इनमें जैन लेखकों ने अपनी पट्टावली परम्परा और गुरुपरम्परा का ऐतिहासिक दृष्टि से वर्णन किया है। ये गद्य-पद्य दोनों रूपों में लिखी गई हैं। तपागच्छ और खरतरगच्छ आदि की पट्टावलियाँ तो प्रसिद्ध हैं ही, पर प्रायः प्रत्येक गच्छ और शाखा की अपनी पट्टावलियाँ लिखी गई हैं।

(२२) **विज्ञप्ति पत्र, विहार पत्र, नियम पत्र, समाचारी**—इन पत्रों के अन्तर्गत जैनाचार्यों के भ्रमण, उनके नियम एवं श्रावकों को चातुर्मास, निवास इत्यादि की सूचनाओं का वर्णन किया जाता है। विज्ञप्ति पत्रों में मार्ग में आने वाले नगरों, ग्रामों का बड़ा ही मनोहारी वर्णन किया जाता है। पत्र लेखन शैली की दृष्टि से भी इनका महत्त्व है।

(२३) **सीख**—सीख का अर्थ है शिक्षा। जैन लेखकों ने धार्मिक शिक्षा के प्रचार की दृष्टि से जिन गद्य-रचनाओं का निर्माण किया, वे सीख-ग्रन्थ हैं।

इस प्रकार राजस्थानी का जैन-साहित्य विविध विधाओं में लिखा हुआ है। कथाकाव्यों, चरितकाव्यों के रूप में इन कवियों और लेखकों ने जहाँ धार्मिक स्तुतिपरक रचनाओं का निर्माण किया वहीं गद्य रूप में वैज्ञानिक एवं ऐतिहासिक ग्रन्थों का भी प्रणयन किया। इस साहित्य में चाहे साहित्यिकता का अभाव रहा हो पर भाषा के अध्ययन एवं साहित्यिक रूपों के विकास की दृष्टि से वह महत्त्वपूर्ण है। जैन साहित्य की आत्मा धार्मिक होने से उसका अंगी रस शान्त है। यों कथा-चरित काव्यों का आरम्भ शृंगार रस से ही हुआ है। विक्रम सम्बन्धी रचनाओं एवं गोरा-बादल सम्बन्धी जैन रचनाओं में वीर रस की भी प्रधानता है। प्रत्येक कृति का आरम्भ मंगलाचरण, गुरु, सिद्ध, ऋषि की वंदना से हुआ है तथा अन्त नायक के संन्यास एवं उसकी सुचारु गृहस्थी के चित्रण द्वारा। चरित-काव्यों एवं मुक्तक रचनाओं के अन्दर लौकिक दृष्टान्तों का स्पर्श है। राजस्थानी जैन गद्य का हिन्दी के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है, किन्तु ऐसे महत्त्वपूर्ण साहित्य का संकलन अभी तक अपूर्ण है।

□

१. पूज्य प्रवर्तक श्री अम्बालालजी महाराज अभिनन्दन ग्रन्थ, पृ० ४६४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org